Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-8(B)| August - 2025

Original Article

प्राचीन भारत में गुरु का महत्व और शिक्षण पद्धति

Reena kumari[1], Dr. Punam kumari[2]
[1]Research scholar Radha Govind University, Ramgarh University, Ramgarh
[2]Assistant Professor Radha GovindUniversity, Ramgarh University, Ramgarh

Manuscript ID:
JRD -2025-170831
ISSN: 2230-9578
Volume 17
Issue 8(B)|
Pp. 165-168
Aug 2025
Submitted:17 July. 2025
Revised: 02 Aug. 2025
Accepted: 17 Aug. 2025
Published: 31 Aug. 2025

परिचय

प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली अपने समय की सबसे समृद्ध और व्यवस्थित प्रणालियों में से एक थी। यह केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास, नैतिकता, आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक जिम्मेदारी और व्यक्तित्व निर्माण करना था। शिक्षा का मूल आधार गुरु ही थे। गुरु शिष्य के मार्गदर्शक, संरक्षक, आदर्श और समाज में नैतिक मूल्यों के संरक्षक के रूप में कार्य करते थे। उनके निर्देशन में शिष्य न केवल ज्ञान अर्जित करता था, बल्कि जीवन मूल्य, चरित्र निर्माण, व्यवहारिक कौशल और मानसिक परिपक्वता में भी प्रवीण बनता था।1प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का प्रधान आधार शिक्षक को गुरु, आचार्य, उपाध्याय आदि विशेषणों से सम्बोधित करते थे। 'आचार्य देवो भव' वैदिक भावना 'गुरु' शब्द में अधिक विकसित दिखायी पड़ती है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात् परब्रह्म तक महनीय बताया गया है। प्राचीन युग में गुरु या आचार्य बनने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही प्राप्त था, जो अन्य विद्याओं के साथ-साथ शस्त्रविद्या, युद्धनीति तथा अर्थशास्त्र का अध्यापन करते थे। धर्मज्ञान, भक्ति का उपदेश करने के कारण वह 'गुरु' कहलाता है। तत्व का, वेदादि शास्त्रों का और आत्मज्ञान के साधनों का उपदेश करने के कारण वह 'गुरु कहा जाता है।2

गुरु का महत्व:

गुरु का महत्व प्राचीन ग्रंथों जैसे ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और उपनिषदों में व्यापक रूप से वर्णित है। प्राचीन भारत में वैदिक युग से ही आचार्य अथवा गुरु की स्थिति को काफी महत्ता दी गयी। समाज में उसका स्थान अत्यन्त गरिमामय एवं आदर युक्त था। भारतीय शिक्षा-पद्धति में सारा का सारा अध्यापन अथवा शिक्षण मौखिक था और विद्यार्थी गुरु के पास ही रह कर शिक्षा ग्रहण करता था। अतः गुरुपद स्वभावतः उच्च एवं महान् माना गया। ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि जैसे देवताओं को गुरु अथवा आचार्य के रूप में उल्लिखित किया गया है। सत्यकाम जाबाल स्वयं अपने गुरू से कहते हैं कि आपके ही समान अन्य गुरुजनों से मैंने सुना है कि गुरु से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही महान् होता है।3 इसलिए गुरु को ईश्वर-पद प्रदान करते हुए परम श्रद्धास्पद माना गया। 4 वह समाज में विश्ववेदा (सर्वज्ञ), 'सत्यमन्या (सत्य जानने वाला), विश्वानिवयुनानि विद्वान् (विभिन्न विद्याओं में पारंगत) जैसे अनेक विशेषण से युक्त था।

उपनिषदों में गुरु को ज्ञान का परम स्रोत माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है – "गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः।" इसका तात्पर्य यह है कि गुरु ब्रह्मा के समान सृष्टि रचते हैं, विष्णु की तरह पालन करते हैं और महेश्वर की तरह मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं।महाभारत और रामायण में भी गुरु की महत्ता स्पष्ट रूप से दिखाई गई है। द्रोणाचार्य, विश्वामित्र, अत्रि और विष्णु शर्मा जैसे महागुरु शिष्यों को न केवल ज्ञान प्रदान करते थे, बल्कि जीवन के व्यवहारिक पक्ष, नीति, धर्म और सामाजिक दायित्वों की शिक्षा भी देते थे।

BY NC SA
Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Quick Response Code:
Website:
https://jrdrvb.org/
DOI:
10.5281/zenodo.17233351
OPEN ACCESS

Address for correspondence:
Reena kumari, Research scholar Radha Govind University, Ramgarh University, Ramgarh

How to cite this article:
kumari, R., & kumari, P. (2025). प्राचीन भारत में गुरु का महत्व और शिक्षण पद्धति. Journal of Research and Development, 17(8(B)), 165–168. https://doi.org/10.5281/zenodo.17233351

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-8(B)| August - 2025

5 गुरु की महत्ता की सुन्दर व्याख्या श्री मद्भागवत् में की गयी है, जिसके अनुसार ध्यान का मूल है- गुरु की मूर्ति, पूजा का मूल है- गुरुचरण, मंत्र का मूल है-गुरुवाक्य तथा मोक्ष का मूल है- गुरु की कृपा ।6 वस्तुतः ब्रह्मज्ञानी गुरु ही शिष्य को ब्रह्मविद्या का तत्व समझाता था।7

गुरुकुल प्रणाली:

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली या आश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय शिक्षा की अनुपम एवं प्रमुख व्यवस्था थी। शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में पिता ही अपनी सन्तान को शिक्षा प्रदान करता था। वेद और उपनिषदों में पिता के आचार्यत्व का पर्याप्त प्रमाण मिलता है।9 वेदों एवं गायत्री मन्त्र की भी शिक्षा पिता प्रदान करता था। कालान्तर में इस प्रक्रिया के लुप्त होने पर लोग बच्चों को किसी योग्य आचार्य के पास भेजते थे। वैदिक शास्त्रों में आचार्य द्वारा उपनयन कर गुरुकुल में शिक्षा प्रारम्भ किये जाने का उल्लेख है। 'अथर्ववेद' में गुरु के लिए समिधाएं और भिक्षा लाने वाले ब्रह्मचारी का उल्लेख स्पष्ट करता है कि पिता के स्थान पर आचार्य से शिक्षा प्राप्त करने की प्रथा वैदिक युग से ही प्रारम्भ हो गयी थी। 10 ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ-विधान सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने वाले आचार्यों की परम्परा का उल्लेख 11 और गुरु के घर पर पशुओं की रक्षा करते हुए विद्यार्थियों का उल्लेख यह इंगित करता है कि विद्यार्थी अपना गृह त्यागकर अपने आचार्य या गुरु के घर जाकर शिक्षा ग्रहण करता था ।गुरुकुल में विद्याध्ययन से पूर्व विद्यार्थी के लिए दो आवश्यक विधान थे-एक तो उसका उपयन-संस्कार और दूसरा, उसका 'ब्रह्मचर्य' व्रत धारण करना।

उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है 'समीप ले जाना'। इससे तात्पर्य बालक को शिक्षा के निमित्त गुरु के पास ले जाने से है। हिन्दू-संस्कारों में उपनयन का सबसे अधिक महत्त्व था जिसके माध्यम से बालक ज्ञान प्राप्त करने अथवा वेदाध्ययन का अधिकारी हो जाता था। वस्तुतः उपनयन संस्कार का प्रधान उद्देश्य था वेदों का अध्ययन। इसके माध्यम से व्यक्ति गुरु, वेद, यम, नियम और देवता के निकट पहुँचता था जिससे वह ज्ञान-प्राप्ति कर सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिये ही उपनयन संस्कार हो जाने के बाद ही बालक 'द्विज' अर्थात् दुबारा (आध्यात्मिक) जन्म लिया हुआ कहा जाता था। यह संस्कार सम्पन्न होने से पूर्व बालक शूद्र समझा जाता था और उसे उसके वर्ण का सदस्य नहीं माना जाता था। लेकिन उपनयन संस्कार सम्पन्न होते ही बालक 'द्विज' की संज्ञा प्राप्त कर लेता था। उपनयन संस्कार इस बात का प्रमाण था कि अनियमित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन प्रारम्भ हुआ।' वस्तुतः शैक्षणिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इस संस्कार की उल्लेखनीय महत्ता थी।

बालक के उपनयन के पश्चात उसका ब्रह्मचर्य जीवन प्रारम्भ होता था और इसी के साथ उसकी औपचारिक और नियमित शिक्षा आचार्य-कुल में सुनियोजित रूप से प्रारम्भ होती थी।' यह तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था के बहुत महत्वपूर्ण विशेषता थी कि गुरुकुल में निवास करते समय विद्यार्थी को अनिवार्य रूप से ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

'ब्रह्मचर्य' शब्द दो शब्दों 'ब्रह्म' और 'चर्य' से बना है, जिनका सम्मिलित अर्थ है 'ब्रह्म के मार्ग पर चलना'। "ब्रह्म और 'वेद' का बनिष्ठ सम्बन्ध है-'ब्रह्मवेद इति श्रुतेः'। 'ब्रह्मचर्य' का दूसरा अर्थ है, 'वेद' मर्ग पर चलना अथवा 'ब्रह्म-ज्ञान'। यद्यपि उपनिषद्-युग में ब्रह्म-ज्ञान की श्रेष्ठतम प्रतिष्ठा थी, तप-त्याग और संयम-नियम का भी ब्रह्मचर्य आश्रम में महत्त्वत्र रहा है, क्योंकि जीवन में इनकी उपादेयता सार्थकता प्रदान करती थी। अपने तप और संयम से ब्रह्मचारी ज्ञान और विज्ञान का अर्जन करता था तथा अपने जीवन को प्रशस्त करता था। 12 विद्यार्थी ब्रह्मविद्या के लिये ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था, अतः ब्रह्म-व्रत के पालन के कारण ही उसे 'ब्रह्मचारी' की संज्ञा दी गयी। गुरुकुल में रहते हुए ब्रह्मचारी का जीवन सभी धर्मों में श्रेष्ठ था, जिसके अनुसरण से परम गति की प्राप्ति मानी गयी है।

गुरुकुल प्रणाली प्राचीन भारत की प्रमुख शिक्षण पद्धति थी। इसमें विद्यार्थी अपने गृहस्थ जीवन को छोड़कर गुरु के आश्रम में रहते थे। यहां उन्हें केवल ग्रंथों का ज्ञान नहीं बल्कि जीवन के विभिन्न अनुभवों का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्राप्त होता था। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान संचयन नहीं था, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मसंयम, जीवन कौशल, सामाजिक उत्तरदायित्व औरग आध्यात्मिक जागरूकता को भी सुनिश्चित करना था। गुरुकुल में जीवन अनुशासित और समग्र था। विद्यार्थी श्रवण, मनन और चिंतन के माध्यम से ज्ञान को आत्मसात करते थे। 13 उन्हें कृषि, संगीत, योग, युद्धकला, शिल्पकला और स्वास्थ्य विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

गुरु-शिष्य का संबंध:

गुरु-शिष्य का संबंध गहन और व्यक्तिगत था। शिष्य अपने जीवन के प्रत्येक निर्णय में गुरु की सलाह और शिक्षाओं का पालन करता था। गुरु का आदर्श और शिक्षण शिष्य के व्यक्तित्व, व्यवहार और जीवन मूल्यों को आकार देता था। अनुशासन, श्रद्धा और समर्पण गुरु-शिष्य संबंध का वास्तविक संबंध था । प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से नहीं, अपितु सीधे उन्हीं के बीच अत्यन्त मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण थे। प्रायः विद्यार्थी योग्य, ख्याति प्राप्त विद्वान् के पास ही शिक्षा ग्रहण करने जाते थे। आचार्य भी उत्साही, जिज्ञासु एवं प्रखर बुद्धि वाले सदाचारी विद्यार्थी को शिष्य के रूप में ग्रहण करता था। मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि-ब्रह्मज्ञ गुरु को चाहिए कि अपनी शरण में आये हुए ऐसे शिष्य को, जिसका चित्त पूर्णतया शांत-निश्चिन्त हो चुका हो, सांसारिक भोगों में सर्वथा वैराग्य हो जाने के कारण जिसके चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता, व्याकुलता या विकार नहीं रह गये हों, जो शम-दमादि साधन सम्पन्न हो अर्थात् जिसने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों को भली-भाँति वश में कर लिया हो, तत्व के अनुरूप उस ब्रह्म विद्या का उपदेश दे।' अयोग्य शिष्य को मन्त्र (शिक्षा) देने पर देवता के अभिशाप की बात कही गयी है। जिस प्रकार मंत्री के द्वारा किये गये पाप का भोग राजा को करना पड़ता है तथा पत्नी के द्वारा किये गये पाप का भोग पति को भी करना पड़ता है, वैसे ही शिष्य के पाप का भागी गुरु होता है। 15 स्पष्ट है कि स्नेह या लोभ होने के बावजूद भी अयोग्य शिष्य को शिक्षा देने की मनाही की गयी है। विद्यार्थी आचार्य-कुल में गुरु के घर के सदस्य के रूप में विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति तक रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। ऐसी स्थिति में उनके बीच पिता-पुत्र जैसे सम्बन्ध या प्रीति का स्थापित हो जाना सहज था। 'निरुक्त' में कहा गया है कि शिष्य अपने आचार्य को पिता और माता के समान समझे तथा उसके

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-8(B)| August - 2025

प्रति कभी भी द्रोह न करे।' गुरु की उच्चस्थ प्रतिष्ठा की बात महाभारत में भी कही गयी है।16 इस संबंध में गुरु शिष्य को केवल विद्या नहीं देते, बल्कि जीवन के कठिन निर्णयों में मार्गदर्शन और मानसिक शक्ति भी प्रदान करते हैं।

शिक्षण विधियाँ:

शिक्षण में श्रवण, मनन, चिंतन, एवं निधिध्यासन की विधियाँ प्रमुख थीं। विद्यार्थी ग्रंथों का अध्ययन, गुरु के उपदेश और प्राकृतिक अनुभवों से ज्ञान अर्जित करते थे। यह विधियाँ न केवल बौद्धिक विकास को प्रबल करती थीं, बल्कि शिष्य के आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की दिशा भी स्पष्ट करती थीं। गुरु शिष्य को जीवन में नैतिकता, आत्मसंयम और सामाजिक जिम्मेदारी का महत्व भी सिखाते थे। शिष्य के कर्त्तव्यों में गुरु-सुश्रूषा का कार्य सम्मिलित था, जिसे करना शिष्य अपना पुनीत कर्तव्य समझता था। सुश्रुषा से ही विद्या की प्राप्ति होती है। चीनी यात्री इत्सिंग भी गुरु के प्रति शिष्य के सेवाभाव की चर्चा करते हुए कहता है-शिष्य गुरु के पास रात्रि के पहले और अन्तिम प्रहर में जाता है। उसके शरीर की मालिश करता है, वस्त्रादि सम्भाल कर रखता है, यदा-कदा गुरु के आवास और आँगन की सफाई करता है। इस प्रकार वह उसके प्रति आदर प्रदर्शित करता है। वह गुरु की आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदा उद्यत रहता था। वह गुरु की न तो निन्दा करता था और न ही सुनता था। आचार्य भी इस बात का ध्यान रखता था कि शिष्य के अध्ययन में कोई विघ्न न पड़े। यदि अध्यापक शिष्य को कहीं भी अपने कार्य से बाहर भेजता था, तो उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी उसी पर रहता था।' कालिदास ने गुरु-शिष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को 'गुरुवोगुरुप्रियम्' कहा है। गुरु की प्रशंसा के साथ शिष्य को उसका अनुवर्ती कहा गया है। गुरुजनों को भी प्रगाढ़ वात्सल्य था। इस तरह आचार्य और शिष्य परस्पर आदर, विश्वास एवं सौहार्द्र की भावना से ओतप्रोत रहते देते थे। 17 यह सम्बन्ध कभी-कभी तो इतने घनिष्ठ हो जाते थे कि आचार्य अपनी कन्या का विवाह अपने योग्य शिष्य से कर देते थे। प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य में काफी घनिष्ठ एवं प्रेमपूर्ण सम्बन्ध थे। "परस्पर सम्मान, विश्वास एकत्रित जीवन" व्यतीत करने के कारण वे अभिन्न थे।

दण्ड आचार्य एवं शिष्य के सम्बन्ध व्यक्तिगत प्रकृति पर निर्भर रहते थे। धौम्य' जैसी प्रकृति के आचार्य अपने शिष्य को कठोर अनुशासन में रखना उचित समझते थे, परन्तु अधिकांश आचार्य अपनी सौम्य प्रकृति के लिए प्रसिद्ध थे। महाभारत में 'वेद' और 'द्रोण' जैसे समादृत आचार्यों का उल्लेख मिलता है।

गुरुदक्षिणा प्राचीन भारत में ब्राह्मणों के दो प्रमुख कार्य थे-अध्यापन और यज्ञ करना। दोनों कर्मों से दक्षिणा मिलता तथा समाज द्वारा उनके पोषण के लिये दान दिया जाना, ब्राह्मणों की जीविका का साधन था। अध्यापन की दक्षिणा को 'गुरु-दक्षिणा' कहा गया। यद्यपि अध्यापन के द्वारा गुरुदक्षिणा के रूप में कोई धन या शुल्क पहले से निश्चित करना मना था, फिर भी प्रत्येक शिष्य का यह कर्त्तव्य था कि वह गुरु को दक्षिणा दे। वैसे शिक्षक सहज भाव से विद्यार्थी को निःशुल्क ज्ञानार्जन कराता था। प्राचीन काल में शिष्य (ब्रह्मचारी) द्वारा समावर्तन संस्कार के समय धन रूप में गुरुदक्षिणा देने की प्रथा विद्यमान थी। अतएव शिष्य का यह हार्दिक प्रयास होता था कि वह गुरु को दक्षिणा प्रदान करके ही घर को प्रस्थान करे।

गुरु की शिक्षा विधियाँ शिष्य की क्षमता, रुचि और स्वभाव के अनुसार विकसित की जाती थीं। अनुशासन, श्रद्धा और समर्पण को गुरु की शिक्षाओं में सर्वोच्च महत्व दिया गया। शिष्य को गुरु के प्रति पूर्ण निष्ठा, सम्मान और आज्ञापालन का पालन करना आवश्यक था। यह न केवल बौद्धिक विकास, बल्कि मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परिपक्वता को भी सुनिश्चित करता था। 13 गुरु और शिष्य का संबंध जीवनपर्यंत मार्गदर्शन और नैतिक अनुशासन का प्रतीक होता था।

गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का अनुभव अत्यंत व्यावहारिक और जीवनोपयोगी था। विद्यार्थी न केवल ग्रंथों का अध्ययन करते थे, बल्कि सामाजिक कर्तव्य, नीति, धर्म, शासन और जीवन मूल्यों की गहरी समझ भी प्राप्त करते थे। गुरुकुल का जीवन स्वावलंबन, सरलता और सामूहिक सहयोग के आदर्शों पर आधारित होता था। विद्यार्थी प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए जीवन के वास्तविक अनुभवों से गुजरते थे, जिससे उन्हें आत्मनिर्भर, साहसी और सामाजिक रूप से जागरूक बनने का अवसर मिलता था। 14 गुरु का योगदान केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी महत्वपूर्ण था।

गुरु का सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। गुरु शिष्यों के माध्यम से धर्म, संस्कृति और समाज के आदर्श स्थापित करते थे। उनके मार्गदर्शन से शिष्य विद्या, संगीत, कला, नाट्यकला, चिकित्सा और योग में दक्षता प्राप्त करता था। गुरु का योगदान समाज और संस्कृति के संरक्षक और संवाहक के रूप में भी महत्वपूर्ण था। गुरुकुल में धार्मिक और सांस्कृतिक उत्सव आयोजित होते थे, जो शिष्यों में सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक सह-अस्तित्व की भावना को मजबूत करते थे। शिष्य इन उत्सवों और समारोहों के माध्यम से जीवन मूल्यों और नैतिक आदर्शों का अनुभव करते थे। गुरु न केवल शिष्य को ज्ञान प्रदान करते थे, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन करते थे। गुरु की शिक्षा शिष्य के निर्णय, सोचने की क्षमता, सामाजिक व्यवहार और नैतिक दृष्टिकोण को आकार देती थी। शिष्य की सफलता, समाज सेवा और चरित्र निर्माण में गुरु की भूमिका अनिवार्य थी। गुरुकुल प्रणाली का प्रभाव जीवनभर शिष्य के सोचने और कार्य करने की क्षमता पर दृष्टिगोचर होता है।:

आज के समय में शिक्षा प्रणाली तकनीकी और व्यावसायिक ज्ञान पर अधिक केंद्रित है, फिर भी प्राचीन भारत की गुरु परंपरा और शिक्षण पद्धति का महत्व आज भी अप्रतिम है। गुरु का आदर्श, शिक्षा का उद्देश्य और नैतिक मूल्य आधुनिक विद्यार्थियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। 17 आज भी कई शिक्षा संस्थान गुरुकुल आधारित पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं, जो जीवन कौशल, नैतिकता और आध्यात्मिक जागरूकता को महत्व देता है।

प्राचीन भारत में गुरु का महत्व केवल शिक्षक तक सीमित नहीं था। गुरु शिष्य को जीवन का ज्ञान, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक दिशा प्रदान करते थे। गुरुकुल प्रणाली, अनुशासन, व्यक्तिगत मार्गदर्शन, जीवनोपयोगी शिक्षा, नैतिक प्रशिक्षण और समाज निर्माण में योगदान इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली ज्ञान और जीवन के लिए समान रूप से प्रभावशाली थी। गुरु और शिक्षण

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-8(B)| August - 2025

पद्धति भारतीय संस्कृति, शिक्षा और समाज का अभिन्न अंग रही है, जिसका महत्व आज भी प्रेरणादायक और प्रासंगिक है। इस विस्तारित चर्चा के माध्यम से पाठक गुरु के बहुआयामी योगदान और शिक्षण पद्धति की समग्रता का अनुभव कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. अचार्य भास्कर, *प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली*, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015।
2. लक्ष्मीतन्त्र, 21.30 एवं 36; विश्वामित्र संहिता, 3.2-16.
3. छान्दोग्योपनिषद्, 4.9.3. 1
4. श्वेतश्वतरोपनिषद्, 6.23. 1
5. डॉ. रामशरण शर्मा, *भारतीय गुरुकुल परंपरा और शिक्षण पद्धति*, प्रकाशन विभाग, बनारस, 2012।
6. श्रीमद्भागवत्, 11.3.21. 1
7. मुण्डकोपनिषद्, 1.1.4-5. 1
8. डॉ. सुरेश चंद्र, *भारतीय शिक्षा और गुरु की महत्ता*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, 2018।
9. बृह. उप., 6.2.7. ।
10. अथर्ववेद, 11.5. ।
11. शतपथ ब्राह्मण, 10.6.5.9. 1
12. डॉ. जयशंकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास; पृ० 233
13. डॉ. वीरेन्द्र नाथ, *भारतीय गुरुकुल और शिक्षा परंपरा*, शोध प्रकाशन, दिल्ली, 2016।
14. डॉ. प्रवीण शर्मा, *प्राचीन भारतीय शिक्षा: दृष्टिकोण और मूल्य*, ज्ञानदीप प्रकाशन, जयपुर, 2014।
15. डॉ. रामकुमार मिश्र, *भारतीय शिक्षा परंपरा और गुरु संस्कृति*, ज्ञानोदय प्रकाशन, भोपाल, 2017।
16. मुण्डकोपनिषद् 1.2.13 (ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर)।
17. महाभारत; उद्यो पर्व; 44.6.-20
18. महावग्ग; 1.32.1
19. अचार्य भास्कर, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015।